हक़ीक़त ख़ुराफात में खो गई !

मुहर्रमुल-हराम औ वर्तमान मुसलमान

[*हिन्दी*]

التحذير من المخالفات الواقعة في شهر الله الحرام

[اللغة الهندية]

लेख

अताउर्रहमान ज़ियाउल्लाह

اعداد: عطاءالرحمن ضياء الله

संशोधन

शफीक़ुर्रहमान ज़ियाउल्लाह मदनी

مراجعة: شفيق الرحمن ضياء الله المدني

इस्लामी आमन्त्रण एंव निर्देश कार्यालय रब्वा, रियाज़, सऊदी अरब

المكتب التعاوني للدعوة وتوعية الجاليات بالربوة - الرياض - المملكة العربية السعودية

1428-2007

islamhouse.com

بِسْمِ اللَّهِ الرَّحْمَٰنِ الرَّحِيمِ

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

अल्लाह के नाम से आरम्भ करता हूँ जो अति मेहरबान और दयालु है।

إن الحمد لله نحمده ونستعينه ونستغفره ونعوذ بالله من شرور أنفسنا ومن سيئات أعمالنا ، من يهده الله فلا مضل له ومن يضلل فلا هادي له ، وأشهد أن لا إله إلا الله وحده لا شريك له وأشهد أن محمدا عبده ورسوله صلى الله عليه وعلى آله وأصحابه وسلم تسليما كثيرا، أما بعد :

हर प्रकार की प्रशंसा और गुण-गान सर्व संसार के पालन कर्ता अल्लाह के लिए योग्य है जिस ने अपनी महान कृपा से हमें इस्लाम की नेमत से सम्मानित किया, तथा अल्लाह की कृपा और शान्ति अवतरित हों अन्तिम सन्देष्टा मुहम्मद पर जिनके द्वारा हमें इस्लाम का संदेश प्राप्त हुआ।

मुहर्रमुल-हराम का महीना हिज्री-वर्ष -इस्लामी जन्त्री- का प्रथम महीना तथा उन चार महीनों में से एक है जिन्हें अल्लाह तआला ने हुर्मत व अदब -सम्मान एंव प्रतिष्ठा- वाले महीने घोषित किए हैं। इस महीने से संबंधित जो विशिष्ट कार्य नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से प्रमाणित है वह इसकी दसवीं तारीख -आशूरा के दिन- रोज़ा रखना है। तथा यहूदियों का विरोध करते हुए आशूरा के दिन के साथ-साथ उसके एक दिन पहले (अर्थात ९ मुहर्रम) या उसके एक दिन बाद (अर्थात ११ मुहर्रम को) भी रोज़ा रखना मुस्तहब (श्रेष्ठ) है। आशूरा का रोज़ा पिछले एक वर्ष के गुनाहों का कफ़्फ़ारा होगा।

रोज़े के अतिरिक्त इस महीने की फज़ीलत या इस में किसी विशिष्ट कार्य के विषय में पैग़म्बर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से कोई भी चीज़ प्रमाणित नहीं है, न तो आप के कथन से न आप के कर्म से, और न ही आप के सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम के कर्म से और न ही उनके बाद ताबईन तथा उनके बाद आने वाले धर्म-शास्त्रियों और इमामों से।

मुहर्रम के महीने से नये वर्ष का आरम्भ होता है, होना तो यह चाहिए कि इस से मुसलमानों में जीवन की नयी लहर दौड़ जाए, कार्य का नया उत्साह और उमंग पैदा हो और शक्ति व स्फूर्ति का नया एहसास जाग उठे।

किन्तु होता क्या है? इस के बिल्कुल विपरीत नाला व शेवन (चीख और रोने-धोने) की भयानक आवाज़ों से वातावरण सोगवार और नौहा व मातम की बैठकों से कार्य-शक्ति नष्ट हो जाती है।

इस महीने की हुर्मत और सम्मान को भंग कर के नये वर्ष का आरम्भ अल्लाह की अवज्ञा, फिस्क़ व फुजूर, पाप, दुराचार और गुनाहों के द्वारा किया जाता है।

आशूरा के दिन रोज़ा रखना तो दूर की बात उस में बिदआत व ख़ुराफात और कुप्रथा एंव कुरीति का वह तूफान उठाया जाता है कि अल्लाह की पनाह।

इस महीने में शीया लोग जो कुछ भी करते हैं, इस में कोई आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि यही उनका धर्म और श्रद्धा है। जबकि यह अत्यन्त स्पष्ट बात है कि जिस प्रकार यह लोग नौहा व मातम की महफिलें संगठित करते हैं यह सब गढ़ी हुई चीज़ें हैं और इस्लामी शरीअत के विरूद्ध हैं, इस्लाम तो वास्तव में इन्हीं चीज़ो को मिटाने के लिए आया है।

किन्तु खेद की बात यह है कि अहले सुन्नत कहलाने वाले बहुत से लोग दीन की शिक्षाओं से अनभिज्ञ होने के कारण इस महीने में बहुत से ऐसे काम करते हैं जिन से शीयों की हमनवाई होती है और उनके असत्य धर्म को बढ़ावा मिलता है। उदाहरण स्वरूपः

- हुसैन रज़ियल्लाहु अन्हु की शहादत के घटने को अतिशयोक्ति के साथ और बढ़ा चढ़ा कर बयान करना।
- इस घटना के उल्लेख में कुछ महान सहाबा को भी लानत करने से न चूकना।
- १० मुहर्रम को ताज़िया निकालना, उसका सम्मान करना, उसके आगे सिर निहोड़ना, उस से मन्नत मांगना, पानी की सबीलें लगाना, अपने बच्चों को हरे रंग के कपड़े पहना कर उन्हें हुसैन रज़ियल्लाहु अन्हु का फक़ीर बनाना।
- ताज़ियों और मातम के जुलूस में बड़े धूम-धाम से भाग लेना।
- मुहर्रम के महीने को सोग का महीना समझ कर इस में शादियाँ न करना।

यह और इस प्रकार की अन्य चीज़ें सुन्नी लोग भी शीयों की हमनवाई में करते दिखाई देते हैं।

इस में कोई सन्देह नहीं कि यह सारी चीज़ें बिद्अत और पथ-भ्रष्ठता हैं, क्योंकि यह इस्लाम की स्वच्छ और निर्मल शिक्षाओं के अत्यन्त विरूद्ध हैं जो कई शताब्दियों बाद एक बातिल फिर्क़े के द्वारा अविष्कार की गई हैं, और सुन्नियों के इस्लाम धर्म से अनभिज्ञ और दीन के दुश्मनों की चालों से अचेत होने के कारण उनके घरों में भी घुस आई हैं और वह बड़ी श्रद्धा और आस्था के साथ इन से चिपके हुए हैं, और वह यह समझते हैं कि बहुत अच्छा कार्य कर रहे हैं। यदि कोई उन्हें इस पर टोकता और समझाने का प्रयास करता है तो उसे आले-बैत का दुश्मन घोषित कर के अपनी सन्तुष्टि कर लेते हैं।

ऐसी गंभीर स्थिति में प्रयास यह है कि सुन्नी भाईयों की सेवा में मुहर्रमुल-हराम के महीने की असल हक़ीक़त को पेश किया जाए, इस आशा के साथ कि शायद किसी दिल में हमारी बात उतर जाए और वह तौबा कर के सीधे मार्ग पर आ जाए।

➢ **सामान्यतः इस महीने को** लोग हुसैन रज़ियल्लाह अन्हु की शहादत के घटने से जानते हैं जो नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की मृत्यु के लग भग अर्ध शताब्दी के पश्चात ६१ हिज्री में १० मुहर्रम के दिन घटित हुआ, जबकि इस्लाम धर्म नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के जीवन ही में सम्पूर्ण हो चुका था। अतः धार्मिक दृष्टि कोण से इस घटने का कोई महत्व नहीं है, और उनकी शहादत को इस महीने की हुर्मत से जोड़ना बिल्कुल ग़लत है। क्योंकि किसी की शहादत का मातम और सोग करना, उसकी बरसी और यादगार मनाना इस्लाम में वैध कार्य होता, या उसका कोई धार्मिक महत्व होता - तो इस्लामी इतिहास में इस से भी कहीं बढ़ कर शहादतों के पेश आने वाले महान घटने इस बात के अधिक योग्य थे कि उनका मातम किया जाता और मुसलमान उनकी यादगार मनाते। शहादते हुसैन से पहले इसी महीने की पहली तारीख को दूसरे ख़लीफा अमीरूल-मोमिनीन उमर फारूक़ रज़ियल्लाहु अन्हु की शहादत की घटना घटी। सन् ३५ हिज्री में १८ ज़ुल-हिज्जा को तीसरे ख़लीफा अमीरूल-मोमिनीन उसमान ग़नी रज़ियल्लाहु अन्हु बेदर्दी से शहीद कर दिये गये। लेकिन सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम और उनके बाद आने वाले मुसलमानों ने इन में से किसी का मातम और सोग तथा यादगार और बरसी नहीं मनायी। अगर ऐसा करना वैध होता तो मुसलमान इन दोनों शहादतों पर जितना भी मातम करते, वह कम होता। किन्तु इस्लाम में इसकी अनुमति नहीं है, बल्कि इस्लाम ने इस नौहा व मातम को जाहिलियत के काम घोषित किए हैं जिनको इस्लाम मिटाने के लिए ही आया है।

➢ **हुसैन रज़ियल्लाहु अन्हु की शहादत** के कारण शैतान को लोगों को भटकाने और मुसलमानों के बीच फित्ना फैलाने का अवसर प्राप्त हो गया। चुनाँचे कुछ लोग आशूरा के दिन खुशी मनाते हैं जैसा कि नासिबी लोग करते थे जिनका अगुवा हज्जाज बिन यूसुफ अस-सक़फी था। इसके विपरीत कुछ लोग उनके बारे में गुलू के शिकार हो गये जिनका अगुवा मुख्तार बिन उबैद था। यह लोग आशूरा के दिन नौहा व मातम करते हैं, मुँह पीटते, रोते चिल्लाते, भूखे पियासे रहते हैं, यही नहीं बल्कि पूर्वजों और सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम को गालियाँ देते और उन पर लानत भेजते हैं, और उन निर्दोषों को भी लपेट लेते हैं जिनका शहादत के घटने से निकट या दूर का कोई संबंध नहीं है। शहादत के घटने का उल्लेख इस प्रकार करते हैं गोया कि यह हक़ और बातिल या इस्लाम और कुफ्र की लड़ाई थी!!

यह रवाफिज़ –शियों– की आईडियालोजी है, जिस के ताल में अधिकांश सुन्नी भी सुर मिलाते हुए अपने भाषणों और आलेखों में यह बावर कराते हैं कि इस्लामी इतिहास में हक़ एंव बातिल की यह सब से बड़ी लड़ाई थी! और हुसैन रज़ियल्लाहु अन्हु ने इस्लाम को बचाने के लिए जान की बाज़ी लगा दी!

ये लोग क्या यह नहीं सोचते कि यदि ऐसा ही होता तो उस समय जबकि सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम की एक अच्छी संख्या उपस्थित थी और उनसे शिक्षा प्राप्त ताबईन अधिकाधिक थे, इस लड़ाई में हुसैन रज़ियल्लाहु अन्हु ही अकेले क्यों निकलते? क्या यह सम्भव है कि हक़ एंव बातिल और इस्लाम एंव कुफ़्र की लड़ाई हो और सहाबा व ताबईन उस से अलग रहें?!!! बल्कि हुसैन रज़ियल्लाहु अन्हु को भी उस से रोकें?!!!

शीयों की आईडियालोजी तो यही है कि (अल्लाह की पनाह) सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम काफिर, मुर्तद और मुनाफिक़ थे, वह यही कहें गे कि यह कुफ़्र एंव इस्लाम की जंग थी, जिस में एक ओर हुसैन रज़ियल्लाहु अन्हु थे और दूसरी ओर सहाबा समेत यज़ीद और उनके समर्थक, सहाबा व ताबईन इस जंग में मूक दर्शक बने रहे!

किन्तु क्या अहले सुन्नत इस दृष्टि कोण को स्वीकार कर लें गे?

क्या सहाबा नऊज़ो-बिल्लाह बेग़ैरत थे? उन में दीन को बचाने का उत्साह नहीं था?

निःसन्देह कोई अहले–सुन्नत सहाबा के विषय में यह दृष्टि नहीं रखता, किन्तु यह बड़ा ही कड़वा सच्च है कि अहले सुन्नत शहादते हुसैन का फल्सफा बयान करने में शीयों का ही विशेष राग अलापते हैं।

वास्तविकता यह है कि कर्बला के घटने को हक़ एंव बातिल की लड़ाई बावर कराने से उन सम्मानित सहाबा के व्यक्तित्व पर धब्बा लगता है जिन्हों ने अल्लाह की बात को सर्वोच्च करने के लिए आजीवन संघर्ष किया और जिनकी तलवारें बातिल को मिटाने के लिए सदैव नंगी रहती थीं।

दरअसल यह मुठभेड़ एक राजनीतिक रूप का था जिसे धार्मिक रंग में रंग दिया गया है, इस को समझने के लिए निम्नलिखित बिंदुओं पर ग़ौर करें:

१. **कर्बला के घटना से संबंधित** सभी इतिहासों में उल्लिखित है कि हुसैन रज़ियल्लाहु अन्हु कूफा की ओर रवाना होने लगे तो उनके संबंधियों और शुभ चिंतकों ने उन्हें रोकने का पूरा प्रयास किया और इस इक़दाम के भयानक परिणाम से सावधान किया। उन में अब्दुल्लाह बिन उमर, अबू सईद खुद्री, अबुद्-दर्दा, अबू वाक़िद अल-लैसी, जाबिर बिन अब्दुल्लाह, अब्दुल्लाह बिन अब्बास और हुसैन रज़ियल्लाहु अन्हुम के भाई मुहम्मद बिन अल-हनफिय्यह प्रमुख हैं। फिर भी आप न रूके और न आप के कूफा जाने के संकल्प में कुछ बदलाव ही आया। इस पर अब्दुल्लाह बिन अब्बास रज़ियल्लाहु अन्हुमा ने समझाते हुए कहा: "यदि आप को अवश्य ही जाना है तो अपने बच्चों और अपनी स्त्रियों को मत ले जायें, इसलिए कि अल्लाह की क़सम! मुझे भय है कि आप उसी प्रकार क़त्ल न कर दिए

जाएं जैसे उसमान रज़ियल्लाहु अन्हु क़त्ल कर दिए गए और उनकी स्त्रियाँ और उनके बच्चे उन को देखते ही रह गए।''

दरअसल हुसैन रज़ियल्लाहु अन्हु के सामने यह बात थी कि कूफा वाले उन को निरंतर कूफा आने का निमन्त्रण दे रहे हैं, अतः वहाँ जाना लाभदायक ही रहे गा।

२. यह भी सभी इतिहासों में आता है कि अभी आप रास्ते ही में थे कि आप को सूचना मिली कि कूफा में आप के चचेरे भाई मुस्लिम बिन अक़ील शहीद कर दिये गए जिन को आप ने कूफा के हालात की जानकारी करने के लिए ही भेजा था। इस खेदजनक सूचना से आप का कूफा वालों पर से भरोसा उठ गया और आप ने वापसी की इच्छा प्रकट की, किन्तु मुस्लिम बिन अक़ील के भाईयों ने यह कह कर वापस होने से इन्कार कर दिया कि हम तो अपने भाई मुस्लिम का बदला लें गे या स्वयं भी मर जाएं गे। इस पर हुसैन रज़ियल्लाहु अन्हु ने कहाः ''मैं भी तुम्हारे बिना जी कर क्या करूँगा?''

इस प्रकार यह कारवाँ कूफा की ओर चलता रहा।

३. **फिर इस पर भी सभी इतिहास** एक मत हैं कि हुसैन रज़ियल्लहु अन्हु जब कर्बला के स्थान पर पहुँचे तो कूफा के गवर्नर इब्ने ज़ियाद ने उमर बिन सअद को बाध्य कर के आप का सामना करने के लिए भेजा। उमर बिन सअद ने आप की सेवा में उपस्थित हो कर आप से बात चीत की तो अनेक इतिहासिक रिवायतों के अनुसार हुसैन रज़ियल्लाहु अन्हु ने उनके सामने यह प्रस्ताव रखेः

''मेरी तीन बातों में से एक बात मान लो; मैं या तो किसी इस्लामी सीमा पर चला जाता हूँ, या मदीना वापस लौट जाता हूँ, या फिर मैं (स्वयं जा कर) यज़ीद बिन मुआविया के हाथ में अपना हाथ दे देता हूँ (अर्थात मैं उन से बैअत कर लेता हूँ)। उमर बिन सअद ने उनका यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।'' (देखियेः अल-इसाबह)

इब्ने सअद ने स्वयं स्वीकार करने के बाद यह प्रस्ताव इब्ने जियाद को लिख कर भेजा, किन्तु उसने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया और इस बात पर अटल रहा कि पहले वह (यज़ीद के लिए) मेरे हाथ पर बैअत करें।

हुसैन रज़ियल्लाहु अन्हु इसके लिए तैयार नहीं हुए और उनके स्वाभिमान ने इसे स्वीकार नहीं किया, चुनांचे इस शर्त को ठुकरा दिया जिस पर लड़ाई छिड़ गई और आप की मज़लूमाना शहादत की यह दुःख प्रद घटना घट गयी।

इन इतिहासिक शहादतों से ज्ञात हुआ कि यदि यह हक़ एंव बातिल की लड़ाई होती तो कूफा के निकट पहुँच कर जब आप को मुस्लिम बिन अक़ील की मज़लूमाना शहादत की सूचना मिली थी तो आप वापसी की इच्छा प्रकट न करते। स्पष्ट बात है कि हक़ के रास्ते में किसी की शहादत से हक़ को स्थापित करने और बातिल को मिटाने का कर्तव्य समाप्त नही हो जाता।

तथा संधि की उन शर्तों से जो हुसैन रज़ियल्लाहु अन्हु ने उमर बिन सअद के सामने रखीं, यह बात बिल्कुल स्पष्ट होकर सामने आ जाती है कि आप के मस्तिष्क में कुछ बाते रहीं भी हों तो आप ने उन्हें परित्याग कर दिया था। बल्कि यज़ीद की सत्ता तक को स्वीकार करने पर तत्परता प्रकट कर दी थी।

- **इस से यह भी स्पष्ट हुआ** कि हुसैन रज़ियल्लहु अन्हु, यज़ीद को बदकार या राज्य का अयोग्य नहीं समझते थे। अगर ऐसा होता तो वह किसी स्थिति में भी अपना हाथ उस के हाथ में देने के लिए तैयार न होते। बल्कि यज़ीद के पास जाने की इच्छा से यह भी प्रत्यक्ष होता है कि आप को उस से अच्छे व्यवहार की आशा थी। अत्याचार बादशाह के पास जाने की इच्छा कोई नहीं करता।

- **इस से इस दुर्घटना के ज़िम्मेदार** भी वस्त्रहीन हो जाते है और वह है इब्ने ज़ियाद की फौज जिस में सब वही कूफी थे जिन्हों ने आप को पत्र लिख कर बुलाया था, उन्हीं कूफियों ने इब्ने सअद की संधि के प्रयासों को असफल बना दिया जिसके परिणाम स्वरूप कर्बला में यह दुःख दायी घटना पेश आया।

जब वास्तविकता यह है कि यह घटना राजनीतिक रूप का है, हक़ व बातिल की लड़ाई नहीं है, तो श्रेष्ठ है कि मुहर्रम के दिनों में इसे वार्ता लाप का शीर्षक न बनाया जाए, इस से शीयों को प्रोत्साहन मिलता है।

- **जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका** है कि मुहर्रम के महीने में शिया लोग जो हुसैन रज़ियल्लाहु अन्हु का नौहा व मातम आदि करते हैं वह नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम, सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम और ताबईन रहिमहुमुल्लाह के सर्वश्रेष्ठ ज़माने के एक लम्बे समय बाद अविष्कार किया गया है। उचित होगा कि सारांश में उसकी पृष्ठि भूमि पर भी प्रकाश डाल दिया जाए ताकि सुन्नी भाईयों के समाने वास्तविकता स्पष्ट हो जाए।

इस कुप्रथा और बिदअत के अविष्कारक बनी बुवैह हैं, यह लोग कट्टर पन्थी शीया थे। जब यह लोग बग़दाद में प्रवेश किये तो उस समय अब्बासी खिलाफत पतन से पीड़ित थी। इन्हों ने शीघ्र ही ख़लीफा पर प्रभुत्ता प्राप्त कर

लिया और उसकी शक्ति को समाप्त करके स्वयं हर चीज़ के कर्त्ता धर्ता बन गए। कुछ दिनों तक तो ये लोग चुप रहे, फिर धीरे-धीरे इनका तअस्सुब प्रकट होने लगा। चुनांचे इन्होंने बग़दाद में अपने शीई धर्म का प्रसार आरम्भ कर दिया। ३५१ हिज्री में मुइ़ज़्जुद्-दौलह ने बग़्दाद की जामा मस्जिद के फाटक पर यह इबारत लिखवा दीः

''मुआविया बिन अबू सुफ्यान पर अल्लाह की लानत हो, फातिमा से फदक को ग़सब करने वाले (अर्थात अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु), अब्बास रज़ियल्लाहु अन्हु को शूरा से निकाल देने वाले (अर्थात उमर रज़ियल्लाहु अन्हु), अबू ज़र को जिला वतन कर देने वाले (अर्थात उसमान रज़ियल्लाहु अन्हु) तथा हसन रज़ियल्लाहु अन्हु को उनके नाना के पास दफनाने से रोकने वाले (अर्थात मर्वान बिन हकम) पर अल्लाह की लानत हो।''

अब्बासी ख़लीफा में इस बिदअत को रोकने की शक्ति नहीं थी। रात को किसी सुन्नी ने इस को मिटा दिया। मुइ़ज़्जुद्-दौलह ने दुबारा लिखवाना चाहा, किन्तु उस के वज़ीर ने परामर्श दिया कि केवल मुआविया के नाम को स्पष्ट किया जाए और उनके नाम के बाद ''आले मुहम्मद पर अत्याचार करने वालों'' का वाक्य बढ़ा दिया जाए। उसने इस सुझाव को स्वीकार कर लिया।

अगले वर्ष (३५२ हि.) १० मुहर्रम को मुइ़ज़्जुद्-दौलह ने आदेश जारी किया कि बाज़ार बन्द रखे जाएं, लोग विशेष वस्त्र पहन कर तथा औरतें चेहरा खोल कर, बाले बिखेरे हुए, चेहरा पीटते हुए और सीना कोबी करते हुए निकलें और हुसैन बिन अली का नौहा व मातम करें। सुन्नियों के लिए यह बहुत कठिन अवसर था, किन्तु शीयों की संख्या अधिक होने के कारण सुन्नी इसे रोक न सके।

मुइ़ज़्जुद्-दौलह ने इसी पर बस नहीं किया बल्कि १८ जुल-हिज्जा को बग़दाद में जश्न मनाने, बाज़ारों को रात में ईद के दिन के समान खुली रखने, ढोल-ताशे बजाने, और अमीरों तथा सिपाहियों के दरवाज़ों पर ''ईदे-ग़दीर'' की खुशी में आग रोशन करने का आदेश दिया।

दरअसल १८ जुल-हिज्जा, ३५ हिज्री को अमीरूल-मोमिनीन उसमान रज़ियल्लाहु अन्हु शहीद हुए थे, जिसे शीयों के लिए ''ईदे-ग़दीर'' मनाने का दिन नियुक्त किया गया !!!

आज कल के शीया इसे इतना महत्व देते हैं कि इसे ईदुल-अज़्हा से श्रेष्ठ समझते हैं।

अगले वर्ष १० मुहर्रम (३५३ हि.) को फिर पिछले वर्ष के समान हुसैन रज़ियल्लाहु अन्हु का मातम किया गया, जिसके कारण अहले सुन्नत और शीयों के बीच भयंकर लड़ाई हुई और लूट खसूट का बाज़ार गर्म हुआ।

यह कुप्रथा आज तक जारी है और हर साल १० मुहर्रम को शीया-सुन्नी फसादात सामान्य बात बन गए हैं।

➤ **अन्ततः** अहले सुन्नत के जन साधारण को इस बात से अवगत कराना उचित होगा कि उनके अधिकांश लोग जिन के श्रद्धालू हैं और उन्हें अपना धर्मगुरू समझते हैं अर्थात मौलाना अहमद रज़ा ख़ान बरेलवी, उन्हों ने भी मुहर्रमुल-हराम के महीने में की जाने वाली बिदआत व ख़ुराफात से सख़्ती के साथ रोका है और उन्हें अवैध और वर्जित घोषित किया है यहाँ तक कि उनकी ओर देखने से भी रोका है।

चुनाँचे उनका फत्वा है किः ''ताज़िया आता देख कर उस से मुँह फेर लेना चाहिए। उसकी ओर देखने ही नहीं चाहिए।''

इसी प्रकार मौलाना ने मुहर्रम को सोग का महीना समझने, उसमें सोग का प्रदर्शन करने, ताज़िया बनाने और उस पर नज़्र व नियाज़ करने, मर्सिया खानी आदि करने को हराम और अवैध बताय है। (अधिक विस्तार के लिए देखिएः ''ताज़ियादारी'', ''अहकामे शरीअत'' तथा ''इर्फाने शरीअत'')

आशा है कि उपरोक्त बातें पाठकों के लिए मुहर्रम के महीने से संबंधित तत्वों की वास्तविकता को समझने और उस में की जाने वाली बिदआत व ख़ुराफात से बचाव करने में लाभदायक सिद्ध हों गी।

وآخر دعوانا أن الحمد لله رب العالمين، وصلى الله على نبينا محمد وعلى آله وصحبه، وسلم تسليماً كثيراً.

अताउर्रहमान ज़ियाउल्लाह *
atazia75@gmail.com *